१

मेरा [illegible] जो भजन संग्रह

(१) विनय-पत्रिका (१०५ की पुस्तक कविता)

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं॥१॥
पायेउँ नाम-चारु-चिन्तामनि, उर करतें न खसैहौं।
स्याम-रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहि कसैहौं॥
परबस जानि, हँस्यो इन इन्द्रिन, निज-बस ह्वै न हँसैहौं,
मन-मधुकर पन कै तुलसी, रघुपति पद कमल बसैहौं॥३॥

(२)

ऐसी मूढ़ता या मन की॥ कृष्ण विनोद (कविता)
परिहरि राम-भगति-सुर-सरिता, आस करत ओस-कन की॥१॥
धूम-समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होत लोचन की॥२॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की॥३॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि! जानत हौ गति जन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज पन की॥४॥

(३)

ऐसे राम दीन-हितकारी (पद १६६, पृ० २६७)।
अतिकोमल करुनानिधान, बिनु कारन पर-उपकारी॥१॥
साधन-हीन दीन निज-अघ-बस, सिला भई मुनि-नारी।
गृहतें गवनि परसि पद पावन, घोर साप तें तारी॥२॥
हिंसा-रत निषाद तामस बपु पसु-समान बनचारी।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेमबस, नहिं कुल, जाति बिचारी॥३॥
जद्यपि द्रोह कियो सुरपति-सुत कहि न जाय अति भारी।
सकल लोक अवलोकि सोकहत, सरन गये भय टारी॥४॥
बिहँग जोनि आमिष अहारपर, गीध कौन ब्रतधारी।
जनक-समान क्रिया ताकी, निज कर सब भाँति सँवारी॥५॥

अधम जाति सबरी जोषित जड़ लोक-बेद तें न्यारी।
जानि प्रीति, दै दरस कृपानिधि, सोउ रघुनाथ उधारी॥६॥
कपि सुग्रीव बंधु-भय-व्याकुल, आयो सरन पुकारी।
सहि न सके दारुन दुख जनके, हत्यो बालि, सहि गारी॥७॥
रिपुको अनुज बिभीषन निसिचर, कौन भजन अधिकारी।
सरन गये आगे ह्वै लीन्हयो भेंट्यो भुजा पसारी॥८॥
असुभ होई जिन्हके सुमिरे ते बानर रीछ बिकारी।
बेद-बिदित पावन किये ते सब, महिमा नाथ! तुम्हारी॥९॥
कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम बिपति निवारी।
कलिमल-ग्रसित दास-तुलसी पर, काहे कृपा बिसारी?॥१०॥

४.

रघुपति-भगति करत कठिनाई (पत्र १६६, पृष्ठ २६१)
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई॥१॥
जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोई सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल-प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी॥२॥
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ, बलतें न कोउ बिलगावै।
अति रसग्य सूच्छम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै॥३॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोई हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत-बियोगी॥४॥
सोक मोह भय हरष दिवस-निसि देसकाल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं॥५॥

५

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो। (पत्र १६२ पृ.सं २६८)
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो॥१॥
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
पर-हित-निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो॥२॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो॥३॥
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि-भगति लहौंगो॥४॥

६. पत्र ९४ पृ० १५६

काहे ते हरि मोहिं बिसारो।
जानत निज महिमा मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो॥१॥
पतित पुनीत, दीन हित, असरन-सरन कहत स्रुति चारो।
हौं नहिं अधम, सभीत, दीन? किधौं बेदन मृषा पुकारो?॥२॥

खग-गनिका-गज-व्याध-पाँति जहँ, तहँ हौंहू बैठारौ ।
अब केहि लाज कृपानिधान ! परसत पनवारो फारो ॥३॥
जौ कलिकाल प्रबल अति होतो, तुव निदेस तें न्यारो ।
तजि
तौ ~~हरि~~ रोष भरोस दोष गुन तेहि, भजते तजि गारो ॥४॥
मसक बिरंचि बिरंचि मसक सम, करहु प्रभाउ तुम्हारो ।
यह सामरथ अछत मोहिं त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो ॥५॥
नाहिन नरक परत मोकहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो ।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु, नामहु पाप न जारो ॥६॥

✓6. पद ९३ पृष्ठ १५५

कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम ।
जेहि करुना सुनि श्रवन दीन-दुख, धावत हौ तजि धाम ॥१॥
नागराज निज बल बिचारि हिय, हारि चरन चित दीन्हें ।
आरत गिरा सुनत खगपति तजि, चलत बिलंब न कीन्हों ॥२॥
~~दिति~~ दितिसुत-त्रास-त्रसित निसिदिन प्रह्लाद-प्रतिग्या राखी ।
अतुलित बल मृगराज-मनुज-तनु दनुज हत्यो श्रुति साखी ॥३॥
भूप-सदसि सब नृप बिलोकि प्रभु, राखु कह्यो नर-नारी ।
बसन पूरि, अरि-दरप दूरि करि, भूरि कृपा दनुजारी ॥४॥
एक-एक रिपुते त्रासित जन, तुम राखे रघुबीर ।
अब मोहिं देत दुसह दुख बहु रिपु कस न हरहु भव-पीर ॥५॥
लोभ-ग्राह, दनुजेस-क्रोध, कुरुराज-बंधु खल मार ।
तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख भंजहु राम उदार ॥६॥

✓८ पद १०१ पृष्ठ १६६

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।
काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे ॥१॥
कौने देव बराइ बिरद-हित, हठि हठि अधम उधारे ।
खग, मृग, व्याध, पषान, बिटप जड़, जवन कवन सुर तारे ॥२॥
देव, ~~असुर~~ दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब, माया-बिबस बिचारे ।
तिन्हके हाथ [illegible] हारे ॥३॥

९ पत्र १७४ पृष्ठ २८१

जाके प्रिय न राम - बैदेही
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥१॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु - भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज - बनितन्हि, भये मुद - मंगलकारी ॥२॥
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥३॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो॥
जासों होय सनेह राम - पद, एतो मतो हमारो ॥४॥

१०. पत्र १६४ पृ० २६५.

जानत प्रीति - रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत, राम सनेह - सगाई॥१॥
नेह निबाहि देह तजि दसरथ, कीरति अचल चलाई।
ऐसेहु पितु तें अधिक गीधपर ममता गुन गरुआई॥२॥
तिय - बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई।
रन पर्‍यो बंधु बिभीषन ही को सोच हृदय अधिकाई॥३॥
घर गुरुगृह प्रिय सदन सासुरे, भई जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरीके फलनिकी रुचि माधुरी न पाई॥४॥
सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई।
केवट मीत कहे सुख मानत बानर बंधु बड़ाई॥५॥
प्रेम - कनौड़ो रामसो प्रभु त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई।
तेरो रिनी हौं कह्यो कपि सों ऐसी मानिहि को सेवकाई॥६॥
तुलसी राम - सनेह - सील लखि जो न भगति उर आई।
तौ तोहिं जनमि जाय जननी जड़ तनु - तरुनता गँवाई॥६॥

५

११. पत्र ६९ पृ० १३८

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥१॥
नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसो?
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो ॥२॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो।
तात-मात, गुरु-सखा तू सब बिधि हितु मेरो ॥३॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरन-सरन पावै ॥४॥

१२. पत्र १९८ पृ० ३१८

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुरलभ देह पाई हरिपद भजु,
करम, बचन अरु हीते ॥१॥
सहसबाहु, दसबदन आदि नृप
बचे न काल बलीते।
हम-हम करि धन धाम सँवारे,
अंत चले उठि रीते ॥२॥
सुत-बनितादि जानि स्वारथरत,
न करु नेह सबही ते।
अंतहु तोहिं तजेंगे पामर!
तू न तजै अबही ते ॥३॥
अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़,
त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ,
बिषय-भोग बहु घी ते ॥४॥

१३. पत्र ११५ पृ० १८४

माधव! मोह-फाँस क्यों टूटै।
बाहिर कोटि उपाय करिय,
अभ्यंतर ग्रन्थि न छूटै ॥१॥

५.

घृत पूरन कराह अंतरगत सीस-प्रतिबिंब दिखावै।
ईंधन अनल लगाय कलपसत, औटत नास न पावै॥२॥
तरु-कोटर महँ बस बिहंग तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करिय बिचारहीन मन सुद्ध होइ नहिं तैसे॥३॥
अंतर मलिन बिषय मन अति, तन पावन करिय पखारे।
मरइ न उरग अनेक जतन बलमीकि बिबिध बिधि मारे॥४॥
तुलसिदास हरि-गुरु-करुना बिनु बिमल बिबेक न होई।
बिनु बिबेक संसार-घोर-निधि पार न पावै कोई॥५॥

✓ १४. पत्र ८९ पृ. १५०

मेरो मन हरिजू! हठ न तजै।
निसि दिन नाथ देउँ सिख बहु बिधि
करत सुभाउ निजै॥१॥
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति
दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ
पुनि खल पतिहिं भजै॥२॥
लोलुप भ्रम गृह पसु ज्यों जहँ तहँ
सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग
कबहूँ न मूढ़ लजै॥३॥
हौं हार्यो करि जतन बिबिध बिधि
अतिसै प्रबल अजै।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब
प्रेरक प्रभु बरजै॥४॥

✓ १५. पत्र १८९ पृ. ३०३

राम कहत चलु, राम कहत चलु,
राम कहत चलु भाई रे।
नाहिं तौ भव-बेगारी महँ परिहै,
छूटत अति कठिनाई रे॥१॥

बाँस पुरान साज सब अटकट,
सरल तिकोन खटोला रे ।
हमहिं दिहल करि कुटिल करम चंद
मंद मोल बिनु डोला रे ॥२॥
विषम कहार मार-मद-माते
चलहिं न पाऊँ बटोरा रे ।
मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय
दुख झकझोरा रे ॥३॥
काँट कुराय लपेटन लोटन
ठावहिं ठाउँ बझाऊ रे ।
जस जस चलिय दूरि तस तस
निज बास न भेंट लगाऊ रे ॥४॥
मारग अगम, संग नहिं संबल,
नाउँ गाउँकर भूला रे ।
तुलसिदास भव-त्रास हरहु अब,
होहु राम अनुकूला रे ॥५॥

✓ १६- पद २०१, पृष्ठ ३२३-

लाभ कहा मानुष-तनु पाये ।
काय-बचन-मन सपनेहु कबहुँक, घटत न काज पराये ॥ १ ॥
जो सुख सुरपुर-नरक, गेह-बन, आवत, बिनहि बुलाये ।
तेहि सुख कँह बहु जतनकरत मन, समुझत नहिं समुझाये ॥ २ ॥
पर दारा, पर-द्रोह मोहबस किये मूढ़ मन भाये ।
गरभबास दुखरासि जातना तीब्र बिपति बिसराये ॥ ३ ॥
भय-निंद्रा मैथुन- आहार सबके समान जग जाये ।
सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गंवाये ॥ ४ ॥
गई न निज-पर-बुद्धि, सुद्ध ह्वै रहे न राम-लय लाये ।
तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि कै पछिताये ॥ ५ ॥

८

१७ पद ८७ पृष्ठ संख्या १४८

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो।
हरि-पद-बिमुख लह्यो न काहु सुख, सठ! यह समुझ सबेरो॥१॥
बिछुरे ससि-रबि मन नैननितें, पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत स्रमित निसि-दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो॥२॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहिबो ताहू केरो॥३॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, श्रुति संदेहु निबेरो।
तुलसिदास सब आस छाँड़ि करि, होहु रामको चेरो॥४॥

१८ पद ११६ पृष्ठ - १६०

हे हरि! कवन जतन भ्रम भागै।
देखत, सुनत, बिचारत यह मन, निज सुभाउ नहिं त्यागै॥१॥
भगति-ग्यान-बैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई।
कोउ भल कहउ, देउ कछु, असि बासना न उरते जाई॥२॥
जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै।
निज करनी बिपरीत देखि मोहिं समुझि महा भय लागै॥३॥
जद्यपि भग्न-मनोरथ बिधिबस, सुख इच्छत दुख पावै।
चित्रकार करहीन जथा स्वारथ बिनु चित्र बनावै॥४॥
हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे।
तुलसिदास इंद्रिय-संभव दुख, हरे बनिहि प्रभु तोरे॥५॥

१९ पद १२१ पृष्ठ १६३

हे हरि! यह भ्रमकी अधिकाई।
देखत, सुनत, कहत, समुझत संसय-संदेह न जाई॥१॥
जो जग मृषा ताप-त्रय-अनुभव होइ कहहु केहि लेखे।
कहि न जाय मृगबारि सत्य, भ्रम ते दुख होइ बिसेखे॥२॥
सुभग सेज सोवत सपने, बारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिहुँ नाव न पार पाव सो, जब लगि आपु न जागै॥३॥

अविचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी ॥
सम संतोष दया विवेक तें, व्यवहारी सुखकारी ॥४॥
तुलसिदास सब बिधि प्रपंच जग, जदपि झूठ श्रुति गावै।
रघुपति-भगति, संत-संगति बिनु, को भव-त्रास नसावै ॥५॥

२० पद १२० पृष्ट १७१

है हरि कस न हरहु भ्रम भारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जबलगि नहि कृपातुम्हारी ॥
अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाई गोसाईं।
बिनबांधे निज हठ सठ परबस परयो कीरकी नाईं ॥२॥
सपने व्याधि बिबिध बाधा जनु मृत्यु उपस्थित आई।
बैद अनेक उपाय करै जागे बिनु पीर न जाई ॥३॥
श्रुति-गुरु-साधु-स्मृति-संमत यह दृश्य असत दुखकारी।
तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति, बिपति सकै को टारी ॥४॥

कबीर दास (१) पृ० २२ में एक बिना कुछ [illegible]

साधो सहज समाधि भली ॥
साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन तैं उपजी दिन दिन अधिक चली ॥१॥
जहँ जहँ डोलौं सोई परिकरमा जो कुछ करौं सो सेवा
जब सोवौं तब करौं दंडवत पूजौं और न देवा ॥२॥
कहौं सो नाम सुनौं सो सुमिरन, खाव पियौं सो पूजा
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं भाव न राखौं दूजा ॥३॥
आँख न मूँदौं कान न रूँधौं, तनिक कष्ट नहीं धारौं।
खुले नैन पहिचानौं हँसि हँसि सुंदर रूप निहारौं ॥४॥
सबद निरंतर से मन लागा मलिन वासना त्यागी।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै ऐसी तारी लागी ॥५॥
कहै कबीर यह उनमनि रहनी सो परगट करि गाई।
दुख सुख से कोई परे परम पद, तेहि पद रहा समाई ॥६॥

— × —

(२)

जियरा तुम जैहौ हम जानी ।।
राज करन्ते राजा जैहैं, रूप करन्ते रानी ।
राज समाज सभासद जैहैं जैहैं सब अभिमानी ।।१।।
वेद पढ़न्ते पण्डित जैहैं, कथा सुनन्ते ध्यानी ।
जोग करन्ते जोगी जैहैं ज्ञान रटन्ते ज्ञानी ।।२।।
चन्दा जैहैं सूरज जैहैं, जैहैं पवन अरु पानी ।
मन और बुद्धि दोनों जैहैं जैहैं सकल परानी ।।३।।
जोगी जैहैं जंगम जैहैं जैहैं जन धन मानी ।
कहैं कबीर हरिजन न जैहैं जिनकी
भक्ति ठहरानी ।।४।।

(३) -x-

पानी बिच मीन पियासी ।
मोहि सुनि-सुनि आवत हाँसी ।।
आतमज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या कासी ।
घर में वस्तु धरी नहिं सूझै, बाहर खोजत जासी ।।
मृग की नाभि माँहि कस्तूरी, बन-बन फिरत उदासी ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सहज मिलै अविनाशी ।।

-x- (४)

कँवल से भवरों बिछुड़ले हो, जहाँ केहू ना हमार ।
भवजल नदिया भयावन हो, बिन जलहि कइ धार ।।
ना देखो नाव न बेड़वा हो, कइसे उतरबि पार ।
सतकई नइया सिरजावल हो, सुमिरन करुवार ।।
गुरु के सबद गोतहरिया हो, खेई उतरबि पार ।
दास कबीर निरगुन गावल हो, संतो लेहु बिचार ।।

-x-

(५)

मन तू पार उतर कर जैहो ।।
आगे पंथी पंथ न कोई, कूच मुकाम न पैहो ।
नहिं तंह नीर नाव नहिं केवट न गुन खैंचनहारा ।
धरती गगन कल्प कछु नाहीं न कछु वार न पारा ।।

नहिं तन महिं मन नहीं अयन पौ सुनके सुदृ न पैहैं।
वचीवान रामू पैठो घर में, वाणी ओरें होई औ।
बार हि बार विचार देख मन अन्त कहूं मत जैहैं।
कहैं कबीर सब छाड़ि कथ्यना ज्यौं के त्यौं ठहरैहो॥

(६) —x—

मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया।
पाँच तत्व की बनी चुनरिया,
सोपर सौबन्द लागे जिया।
मर चुनरी मोरे मैके ते आई,
ससुरे में मनुवाँ खोय दिया।
मलि मलि धोई दाग न छुटै,
ज्ञान को साबुन लाये दिया।
कहै कबीर दाग कब छुटिहैं,
जब साहब अपनाये लिया।

(6) —x—

मन राम सुमिर पछतायगा।
पापी जिसका नाम करत है आप काल उड़ जायेगा
लालच लागे जनम गंवायो माया भ्रम में भुलायेगा।
धन यौवन का गरब न करिये कागज सा गल जायेगा
धर्मराज जब लेखा मांगे क्या मुँह लेकर जायेगा
कहत कबीर सुनो भाई साधो साधु संग तर जायेगा।

—x—

(८)

रस गगन गुफा में अजर झरै।
बिन बाजा झनकार उठै जहं समुझि परै जब ध्यान धरै॥
बिना ताल जहं कमल फुलावैं तेहि चढ़ि हंसा केलि करै।
बिन चन्दा उजियारी दसै जहं तहं हंसा नजर पड़ै॥
दसवें द्वारे तारी लागी अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।
काल कराल निकट नहिं आवे काम क्रोध मद लोभ जरै॥
जुगन जुगन की तृष्णा बुझानी कर्म भर्म अघ व्याधि टरै।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो अमर होय कबहूं न मरै॥

—x—

(९)

हरि बिन कौन सहाई मनका ॥
मातु पिता भाई सुत बनिता हितु लागों सब इनका।
आगे को कछु तुलहा बान्धहु, कहा भरोसा धनका।
कहा बिसासा इस भाँडे का तनकु लागे भग ठनका ॥
सरबस धर्म पुण्य फल पावहु धूरि बांछहु सब जनमका।
कहे कबीर सुनहु रे सन्तो उहु मन उड़न परेवरू बनका ॥

— x —

(१०)

जनम तेरा बातों ही बीत गयो,
तूने कबहुँ न कृष्ण कह्यौ।
पाँच बरस का भोला-भाला
अब तो बीस भयो।
मकर पचीसी माया कारन
देश बिदेश गयो ॥
तीस बरस की अब मति उपजी,
लोभ बढ़े नित नयो।
माया जोरी लाख करोरी
अजहुँ न तृप्त भयो ॥
वृद्ध भयो तन आलस उपजी,
कफ नित कण्ठ रह्यो।
सन्त संगत नहीं कीन्हीं तूने
बिरथा जनम गयो ॥
यह संसार मतलब का लोभी
झूठा ठाट रच्यो।
कहत कबीर समझ मन मूरख
तू क्यों भूल गयो ॥

— x —

(११)

मत कर मोह तू हरिभजन को मान रे ॥
नयन दिए दरसन करने को
श्रवण दिए सुन ज्ञान रे

बदन दिए हरि गुन गाने को,
हाथ दिए कर दान को रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
कंचन निपजत खान रे॥

-x-

(१२)

~~मत कर मोह तू हरिभजन~~

थोड़ दिनवां के तदबीर कर लो बन्दे
थोड़ दिनवां के तदबीर॥
भव सागर के राह कठिन बा
नदिया बहे गंभीर।
नाव न बेड़ा लोग बटोरा
खेवनवाला जदुवीर॥
ना संग जइहें भाई भतीजा
ना संग जइहें नारी।
ना संग जइहें धन दउलतिया
ना संग जइहें शरीर॥
जमहु के दुअरवा लोहा के सीकड़
बन्हिहैं मुसुकचढ़ई
ले सोंटा जम मारन लागे
पूछिहैं पहिला कमाई॥
कहले कबीर सुनहु भाई साधो
उपद हउये सही॥

-x-

(१३)

पहिला गवन पिया ले अइले,
पनिया के भेज दिहले हो राम।
देखनीं ए कुइयाँ के रीत
धइलवो ना डूबले हो राम।
कुइंया के मुँह बड़ा पातर,
जल बड़ा दूर नु हो राम।
का लेके होइबो हजूर
पिया के समुझाइब हो राम॥
~~साग मोरा~~ [illegible]

ननद गच ऊपर हो राम।

१४ पिया मोरा सूतले अगम घर
कउसे के भगाई नु हो राम॥
उठु उठु ननदु अभागिन
सैंया के जगा द नु हो राम
पांच पचीस घर पउसले
सब धन मूसले हो राम॥
दास कबीर निरगुन गावले
गाउके बुझावले हो राम।
तोरा मोरा अतने होदार
बहुरि जग ना आइब हो राम॥

—x—

(१४)

एक तो मैं बारी भोरी, दुसरे पिया के चोरी,
ए कि आहो राम हो, तीसरे बिरह-रसवा मातल
हो राम॥
फूल लोढ़े गइलों बारी, सारी मोरी अरुझ गरी।
ए कि आ हो रामा, पिया बिनु काहूना छुड़ावले हो राम॥
सारी मोरा फाटि गइले, अँगिया मसकि हो गइले,
नैना थाकि नव रंग भींजेला हो राम॥
रोवते धोवते रामा चढ़लो अटरिया हो,
जहाँ जोगी धुनिया हो रमावले हो राम॥
जोगी का दुअरवा रामा अनहद बाजा बाजे,
जहाँ नाचे सुरती हो सोहागिन ए राम॥
दास कबीर इहो गावे निरगुनवा हो,
फेरू ना बहुरि रही जग आइब हो राम॥

— x —

(१५)

भजन कर भैया अन्हरा काहे माया में भुलाया हो।
सोना के गढ़ लंका बने मोतियन केर छाया हो॥
कोप भइले भगवान के घन भाँति किलाया हो॥
सोरह सोरह जाके दुर्योधन राजा हो,।
से दुर्योधन गलित भए, तन गिधवा खाया हो॥

गंगा जमुनवा के रेत में मालिन बगिया लगाया हो,
काँच कलिया तोड़के मालिन मन पछताया हो।
गिरि पर्वत के मछरी भवसागर आया हो।
कहले कबीर धर्मदास में धन बसी लगाया हो॥
कोठा ऊपर कोठरी ओ में दियरा न बाती हो,
बहियाँ पकरी जम्ह ले चले कोऊ संगवा न साथी हो।
कागज के त नइया बने लोहवा केरभारा हो,
खेवनहार भगवान है जिनका सिरे भारा हो॥

— × —

(१६)

दस पाँच सोतिया बहल एक नदिया रामा,
ओही नदिया कमला हो फुला गइले हो राम॥
फूल एक फुलले गजब फूल फूल सजनी हे
ओही फूले भँवरा लोभा गइले हो राम॥
दह जब सूखी गइले फूल कुम्हलाइ गले,
भँवरा उड़ले कोई ना देखल हो राम॥
दास कबीर इहो गावे निरगुनवा हो,
सब ना बउरि रहि मन ग्राहक हो राम॥

— × —

(१७)

मनुखवा के जिनिगिया प्रणऊ अपना मिलिहें हो।
देह छुटी घोड़ा तन होइब मुँहला में परिहें लगाम।
ले तंगिया हटिया पहुँचाइब सूखल घास चिबाइब॥
ककड़ चुनि चुनि कोठा उठायो लोग कहे घर मेरा।
ना घर मेरा ना घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा॥
सिर धुन धुन कर तिरिया रोए जोड़ी
बिछुड़ गइले मोरा
कहत कबीर सुनो भाई सन्तो जिन जोग तिन योग॥

— × —

(१८)

तोरा दया धरम ना तन में
मुखड़ा क्या देखा दरपन में॥
आम का गाछी कोइलिया राजी,
मोरवा राजी बन में।
[illegible] तोतो राजी
तपसी राजी गगन में॥

टेढ़ी पाग कुसुम्भा जामा शोभै गोरे तन में
एक दिन ऐसा आइ पड़ेगा
खाके लौटी रहि तन में ॥
पेच सँवारे मोंछ मसारे
तेल चुवै जुलफन में ।
कहत कबीर सुनो भाई ~~साधो~~ सन्तो
ऊ का ना रिहें रन में ॥

(19)

केहिए जनम दिहले केहिए लिखले पाती ।
कवन गइया आवेले हो बुलावन कु रे की ॥
रामजी जनम दिहले बरहमा लिखले पाती,
जमह भइया आवले हो बोलावन कु हो राम ॥
माई बाप घेरले बाड़े, जड़ी बूटी देते बाड़े ।
हँसा के उड़इते केहु ना देखल रे की ॥
धन वित्त काम ना अइले, माइ बाप संग ना गइले ।
गुन अवगुनवा संग जाले कु रे की ।
एक कोस गइले हंसा : दोसर कोस गइले,
घूमि घूमि मंदिर निरेखले हो राम ।
ओही रे मंदिरवा रामा अता सुख कइलो रे ।
ओही रे मंदिरवा अगिया धरावल हो राम ॥

(20)

— x —

कहँवा से हँसा आवले, कहवाँ समा गइले हो राम ।
कवना गढ़ कइले मुकाम, कहँवा लपटा गइले हो राम ॥
निर्गुण से हँसा आइल सगुन में समाइल हो राम,
काया गढ़ कइले मुकाम, माया में लपटा गइले हो राम ।
एही जग के इनाहिं अपना ; के करा से बोलक ए राम
बिना तरुवर मैदान, अकेला हँसा डोलले हो राम ।
एही जग से ठग उपजले सभनी ठगा गइले हो राम ।
दास कबीर ठग चीन्हले हँसा के उबारेल हो राम ॥
कहले हँसा सुन तरुवर हम उड़ी जाइब हो राम ।
मोरा तोरा अतने होइल ... मइहों आस्क हो राम ॥

१८ X दादू (१)

अबहूं न निकसै प्रान कठोर।

X अवधि गई अजहूं नही आये,
कतहूं रहे चित चोर।
कबहूं नैन निरखि नहि देखे
माल चित तोर॥
दादू ऐसे आतुर विरहिनी
जैसे चांद चकोर॥

(२)
मेरे मन भैया राम कहौ रे।
राम नाम मोहि सहज सुनावै
उनही चरण मन कीन रहौ रे
राम नाम ले संत सुहावे
कोई कहै सब सीस सहौ रे.
वाही सो मन जोरे राखो
नीके राखि लिये निबहौ रे
कहत सुनत तेरो कछु न जावे
पाप निदेदन सोई कहौ रे
दादू रे मन हरि गुण गावो,
कालहि जालहि फेर दहौ रे॥

X दरिया (१)

बिहंगम कौन दिसा उड़ि जैबो ।
नाम बिहूना सो परहीना,
भरमि भरमि भौरइहैं
गुरु निंदक अरु संतन द्रोही,
निन्दै जनम गवैबो ।।
मदपी भाति मदन तन
ब्यापक अमृत तपि बिष रैबो
समुझहु नाहिं वा दिन की बातें
पल पल घात लगैबो ।।
चरन केवल बिनु सो नर
कूँडइ
दरिया कहैं सतनाम भजन बिनु
रोई रोई जनम गवैबो ।।

११
✓ रैदास (१) आसोमी, दुबा १

अब कैसे छुटै नाम रट लागी
प्रभुजी तुम चंदन हम पानी ।
जाकी अंग अंग बास समानी ।
प्रभुजी, तुम घन बन हम मोरा ।
जैसे चितवत चंद चकोरा ।
प्रभुजी तुम दीपक, हम बाती
जाकि ज्योति बरै दिन राती ।
प्रभुजी तुम मोती हम धागा
जैसे सोनहि मिलै सुहागा ।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा
ऐसी भक्ति करै रैदासा ।।

— x —

20 X

भीखा (१)

प्रीत की ऐसी रीत बखानौं ।
कितनौ सुख दुख परै देह पर
चरण कमल कर अपना ध्यानौं
जड़ चैतन्य विचारि तजौ भ्रम,
स्वाद धूरि जनि सानौ
जैसे चातक स्वाति बूँद बिन प्रान समर्पण ठानौ
भीखा जेहि तन राम भजन नहि काल रूप तिहि जानौ।

— x —

रैदास (२)

X प्रभु जी संगत सरन तिहारी
जगजीवन राम मुरारी ॥
गली गली को जल बहि आयो
सुरसरि जाय समायो
संगत के परताप महातम
नाम गंगोदक पायो ।
स्वाति बूँद बरसे फनि ऊपर
सीस विषै होई जाई
ओयी बूँद के मोती निपजे
संगति की अधिकाई
तुम चन्दन हम रेंड़ बापुरो
निकट तुम्हारे आसा
संगत के परताप महातम
आये बास सुवासा
जाति भी ओछी करम भी ओछा
ओछा करतब हमारा
नीचे से प्रभु ऊँच कीयो है
कह रैदास चमारा ॥

राम मैं पूजा कहाँ चढ़ाऊँ
फल अरु फूल सुद न पाऊँ
थन तर दूध जो बछरु जुठारे
पुहुप भँवर जल मीन बिगारी
मलयागिरि बेधि को भुअंगा
विष अमृत दोऊ एके संगा
मन ही पूजा मन ही धूप
मन ही से ऊँ सहज सरूप
पूजा अर्चा न जानू तेरी
कह रैदास कौन गति मेरी ॥

— x —

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय,
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय ।
नमोऽद्वैततत्वाय मुक्तिप्रदाये ।
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय ॥ १॥

—

भयानां भयं भीषणम् भीषणानाम्
गतिः प्राणिनाम् पावनम् पावनानाम् ।
महोच्चैः पदानाम् नियन्तृ त्वमेकम् ।
परेशं परम् निश्चलम् निर्विकल्पं ॥२॥

—

वयं यस्य विश्वं सदा संस्मरामो सदाऽस्ते,
यदाश्रित्य भाति पदं वै विचित्रम्
न जानन्ति यम् तत्त्वतो योगिनोऽपि
चिदानन्द रूपं तमेवं प्रपद्ये ॥३॥

मीरा

२२ त्वमेकं वरेण्यम् त्वमेकं शरण्यम्
त्वमेकं जगत्कर्तृ पातृ विहन्तृ।
वयं त्वां नमामः वयं त्वां स्मरामः
वयं त्वां पितृस्वरूपं भजामः॥

✓ जगत् कर्तृरूपं

साधो ~~सहज समाधि भली~~ राम बिना कछु नाही॥
राम ही आगे, राम ही पीछे राम ही बोलै मांही॥१॥
उत्तर राम ही दक्खिन राम ही, पूरब पच्छिम रामा।
स्वर्ग पताल मर्त्यतल रामा, राम सकल निष्कामा॥२॥
ऊपर राम ही नीचे राम ही, जागत सोवत रामा।
✓ राम बिना कछु और न दरसे, सकल राम के धामा॥३॥
सकल चराचर पूरन रामा, निरखो सकल-सनेही।
✓ कायम सदा कहूं ना बिनसै, बोल निराला येही॥४॥
एक राम को भजो निरन्तर, एक राम को गावे,
कहै कबीर राम के पासे, आपा खो न पावे॥५॥
"साधो सहज समाधि भली"

✓ कबीर सब जग निर्धना, धनवन्ता नहि कोय।
धनवन्ता सो जानिये, राम-नाम धन होय॥१॥
जा घट प्रीति न प्रेम रस पुनि रसना नहिं नाम।
ते नर-पसु संसार में, उपजे मरे बेकाम॥२॥
सब घट मेरा साईंया, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परगट होय॥३॥

X मीरा (१)

आलि रे नैना बाण पड़ि
चित चढ़ी मोरे माधुरी मूरत
दूर बीच आज पड़ि
कबकी ठाड़ी पंथ निहारू
अपने भवन खड़ि
के के प्राण पिया बिनु राखूँ
जीवन मूरख नड़ि
मीरा गिरिधर हाथ बिकानी
लोग कहे बीगड़ी ॥

(२)

X अँखिया श्याम मिलन की प्यासी।
आप जो जाया द्वारका छाये,
लोक करत मेरी हाँसी
आम की डारी कोयल बोले
बोलत शबद उदासी।
~~मेरे~~ तो मन में ऐसी आवत है
करवट ले जाय काशी।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर
चरण कमल की दासी।

(3)

X मोहन के मैं रूप लुभानी
सुन्दर बदन धमाय दल लोचन
बाँकी चितवन मन मुसकानी
जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै
बंसी में गावैं मीठी बानी
तन मन धन गिरिधर पर वारूँ
चरण कमल मीरा लपटानी।

28

(४)

X हरि मेरे जीवन प्राण अधार ।

और आसरो नाहीं तुम बिन
तीनों लोक मँझार
आप बिना मोहि कछु न सुहावे
निरख्यौ सब संसार ।
मीरा कहै मैं दास रावरी
दीज्यो मती बिसार ॥

(५)

मनुवाँ राम नाम रस पीजै ।
तज कुसंग सत्संग बैठ नित,
हरि चर्चा सुन लीजै
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ
बहा चित्त से दीजै ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर,
ताहि के रंग में भीजै ॥

(६)

पायो जी मैंने तो राम रतन धन पायो ॥
वस्तु अलौकिक दी म्हारे सतगुरु.
अमोलक
किरपा कर अपनायो ।
जनम जनम की पूँजी पाई
जग में यूँ ही खोवायो ॥
खरचै नहिं, कोई चोर न लेवै,
दिन दिन बढ़त सवायो ॥
सत की नाव खेवइया सतगुरु,
भवसागर तर आयो ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर,
हरख हरख जस गायो ॥

२५ रघुपति भगति करत कठिनाई -
विनय पत्रिका पद सं० १६७ पृ० २६१

तो तुम बहुत अनुग्रह कीन्हा - पद १०२ पृ० १६८
ऐसो को उदार जग माहीं - पद - १६२ पृ० २५४

✓ जौ मोहि राम लागते मीठे। ✓
तौ नव रस षड़ रस रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे।
बंचक विषय विविध तनु धरि अनुभवे, सुने अरु डीठे।
यह जानत हौं हृदय आपने, सपने न अघाइ उबीठे।
✓ तुलसीदास प्रभु सों एक हि बल बचन कहत अति ढीठे।
नाम की लाज राम करुनाकर, केहि न दिये कर चीठे॥

✓ मेरे मन मोया, राम कहौ रे। (भक्ती पृ० २५५ पी. ग. पाली)
रामनाम मोहि सहज सुनावै, उनही चरन मन कीन रहौ रे
रामनाम ले सन्त सुहावे, कोइ कहै सब सीस सहौ रे॥
वाही से मन जोरे रखो, नीके राख लियें निबहौ रे॥
कहत-सुनत तेरो कछू न जावै, पाप-निछेदन सोइ लहौ रे।
दादू रे जन हरि गुन गाओ, काल हि जाल हि फेरि दहौ रे॥

जीवने जत पूजा हल न सारा, ✓
जानी हे जानी, ताओ हय नि हारा॥
जो फूल न फुटिते झरे छे धरनिते,
जो नदी मरुपथे हारलो धारा॥ जानि हे जानि,
आछ्यि अनागत, आछ्यि अनाहत,
तोमार बीना तारे बाजिछे तारा॥
जीवने आजो जाहा रयेछे पीछे,
जानि हे जानि ताओ हय नि मीछे॥

(1) ✓ भ्रमरगीत - सूर

हमारे हरि हारिल की लकरी।
मन बच, क्रम नन्दनन्दन सों उर यह दृढ़ करि पकरी॥
जागत, सोवत सपने सौंतुख कान्ह कान्ह जकरी।
सुनतहि जोग लगत ऐसो अलि, ज्यों करुई ककरी॥
सोई व्याधि हमें ले आये, देखी सुनी न करी।
यह तौ सूर तिन्हें लै दीजै, जिनके मन चकरी॥

(2) ✓ प्रभु मेरे अवगुन चित न धरौ।
समदरसी है नाम तुम्हारो आपन पन ही करौ॥
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परौ,
यह दुविधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ॥1॥
इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरौ।
जब मिलिके दोउ एक बरन भयो, सुरसरि नाम परौ॥2॥
एक जीव एक ब्रह्म कहावत, सूर स्याम झगरौ।
अब की बेर मोहि पार उतारो नहिं पन जात टरौ॥3॥

(3) ✓ अपुनपौ आपुन ही बिसरयो॥
जैसे स्वान काँच मन्दिर में भ्रमि भ्रमि भूँकि मरयो॥
हरि सौरभ मृगनाभि बसत है द्रुम तृन सूँघि मरयो
ज्यों सपने में रंक भूप भयो तसकर अरि पकरयो॥
ज्यों केहरी प्रतिबिम्ब देखि कै आपुन कूप परयो।
ऐसे गज लखि फटिक सिला में दसननि जाइ अरयो॥
मर्कट मूठ छाड़ि नहिं दीन्हीं घर घर द्वार फिरयो।
सूरदास नलिनी को सुवटा कहि कौने जकरयो॥

—x—x

कबीर २८

माया महा ठगिनी हम जानी।
निरगुन फाँस लिये कर डोलै बोलै मधुरी बानी॥
केसव के कमला ह्वै बैठी सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरति ह्वै बैठी, तीरथ में भई पानी॥
जोगी के जोगिन ह्वै बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू के कौड़ी कानी॥
भगतन के भगतिन ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो भई साधो यह सब अकथ कहानी॥

—x—

साधो सो सतगुरु मोहि भावै।
सत्त नाम का भर भर प्याला, आप पियै मोहि प्यावै॥
मेले जाय महन्त न करावै, पूजा भेंट न लावै,
परदा दूर करे आँखिन का निज दरसन दिखलावै॥
जाके दरसन साहब दरसैं, अनहद सबद सुनावै।
माया के सुख दुख कर जानै, संग न सुपन चलावै॥
निसिदिन सत संगति में राँचे सबद में सुरत समावै,
कह कबीर ताको भय नाहीं, निर्भय पद परसावै॥

—x— —x—

अवधू अन्ध कूप अँधियारा।
या घट भीतर सात समुन्दर याही में नदी नारा।(१)
या घट भीतर काशी द्वारिका याही में ठाकुर द्वारा।
या घट भीतर चंद सूर है याही में नौ लख तारा।(२)
कहैं कबीर सुनो भाई साधो याही में सतकरतार हो॥(३)

झीनी झीनी बीनी-चदरिया।
काहे के ताना काहे के भरनी कौन तार से बीनी॥
इला पिंगला ताना भरनी सुखमन तार से बीनी॥ -चदरिया॥
आठ कँवल दल-चरखा डोले पाँच तत गुनतीनी,
साईं का सियत मास दस लागे ठोंक ठोंक के बीनी॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े ओढ़ के मैली कीनी।
दास कबीर जतन से ओढ़े ज्यों के त्यों धर दीनी॥ -चदरिया॥ ३॥

— x —

या जग अन्धा, मैं केहि समुझावौं।
इक दुइ होय, उन्हैं समुझावों, सकल भुलाना पेट का धन्धा।
पानी के घोड़ा, पवन असवरवा, ढरकि परै जैसे ओस के बुन्दा,
गहरी नदिया अगम बहै धरवा खेवनहारा के पड़िगा फन्दा।
घर की वस्तु निकट नहिं आवत, दियना बारि के ढूंढत अंधा।
लागी आग सकल बन जरिगा, बिन गुरु ज्ञान भटकिगा बन्दा।
कहै कबीर सुनो भई साधो, इक दिन जाय लंगोटी झार बन्दा॥

x — x

मन ना रँगायो, रँगाये जोगी कपड़ा।
आसन मारि मँदिर में बैठे नाम छाड़ि पूजन लागे पथरा।
कनवाँ फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौले, दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैले बकरा।
जँगल जाय जोगी धुनिया रमौले, काम जारि जोगी बनि गैले हिजरा।
मथवा मुँड़ाय जोगी कपड़ा रँगौले, गीता बाँचि के होइ गइले लबरा।
कहत कबीर सुनो भई साधो जम दरवजवा बाँधल जैहे पकड़ा॥

रमैया के दुलहिन लूटा बजार।
सुरपुर लूटा नागपुर लूटा तीन लोक मचा हाहाकार।

ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारद मुनि के परी पिछार।

सिंगी की मुद्रा धारी, परबत के उदार निहारा॥
कन फुका चिर काखी लूटे जोगेसर सब करत बिचार
हम तो बचिगे साहब दया से सबद डोर गहि उतरे पार।
कहत कबीर सुनो भई साधो, इस ठगिनी से रहो हुशियार।

x — x

✓ घूँघट का पट खोल रे तोहे पीव मिलेंगे।
घट घट में वह साईं रमता कटुक बचन मत बोल रे।
धन जोबन को गरब न कीजै झूठा पँचरंग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बारि ले आसन से मत डोल रे।
जोग जुगुत सों रँग महल में पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥

— x —

✓ पायो सतनाम गरे के हरवा॥
साँकर खटोलना रहनि हमारी, दुबरे दुबरे पाँच कहरवा।
ताला कुंजी हमें गुरु दीन्हों, जब चाहौं तब खोलौं किवरवा।
प्रेम प्रीति की चुनरी हमारी, जब चाहौं तब नाचौं सहरवा।
कहै कबीर सुनो भई साधो, बहुरि न ऐबौं एही नगरवा॥

✓ रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँटे की बाड़ी उलझ पुलझ मरि जाना है।
" " झाड़ और झाँखड़ आग लगी बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो सतगुरु नाम ठिकाना है

✓ (39)

मन फूला फूला फिरै जगत में कैसा नाता रे।

माता कहै यह पुत्र हमारा बहन कहै बीर मेरा।

भाई कहै यह भुजा हमारी नारी कहै नर मेरा॥

पेट पकड़ि के माता रोवै, बाँह पकड़ि के भाई।

लपटि झपटि के तिरिया रोवै हंसा अकेले जाई॥

चार गजी चदरी मंगाई, चढ़ा काठ के घोड़ी।

चारों कोने आग लगाई, फूंक दियो जस होरी॥

हाड़ जरै जस लाकड़ी, केस जरै जैसे घासा।

सोना जैसी काया जरि गई कोउन आयो पासा॥

कहै कबीर सुनो भाई साधो छोड़ो जग की आसा॥

— x —

✓ मेरे गुरु ने मँगायो चेला, भेद॥

पहली भिक्षा अन्न की लाना, गाँव नगर के पास न जाना,

हिन्दू तुर्क बच्चा (छोड़) के लाना, लाना झोरी (ली) भर के॥

दूजी भिक्षा माँस की लाना, जीव जन्तु के पास न जाना

तीजी भिक्षा जल की लाना, कुआँ बावरी पास न जाना।

ताल तलैया छोड़ के लाना, लाना तुँबी भर के॥

चौथी भिक्षा लकड़ी लाना, रूख वृक्ष के पास न जाना,

गीली सूखी छोड़ के लाना, लाना गट्ठर भर के॥

कहत कबीर सुनो भई साधो, यह पद है निरबाना।

जो इस पद के अरथ लगावे, सो ही चतुर सुजाना॥

x — x — x

✓ लोका मति का भोरा रे॥ रामहि कौन निहोरा रे॥

जौ काशी तन तजे कबीरा, इहै जनम का लाहा रे।

[illegible] वैसे अब हम ऐसे, [illegible] रे।

कहुँ कहुँ [illegible] जियते, [illegible]

राम भगति पर जा को हित चित, ताको अचरज काहा रे।
गुरु परसाद साधु की संगति जग जीतें जाय जुलाहा रे।
कहै कबीर सुनहु हे सन्तो, भ्रमि परै जनि कोई रे।
जस कासी तस मगहर ऊसर हिरदै राम सत होई रे॥

x — x — x

पानी बिच मीन पियासी, मोहि सुनि सुनि आवत हाँसी।
आतमज्ञान बिना सब सूना क्या मथुरा क्या कासी॥
घर में बस्तु धरी नहिं सूझै बाहर खोजन जासी,
✓ मृग की नाभि माँहि कस्तूरी, बन बन फिरत उदासी।
कहत कबीर सुनो भई साधो, सहज मिलै अबिनासी॥

दुबारा

पद हो गयी

X घूँघट का पट खोल रे, तोहें पीव मिलेंगे।
घट घट में वह साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे॥
धन जोबन को गरब न कीजै, झूठा पंचरँग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बारि ले, आसन सों मत डोल रे।
जोग जुगत से रङ्ग महल में, पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।

उस समरथ को दास हौं, कदें न होय अकाज।
पतिबरता नाँगी रहै, वाही पुरुष को लाज- कबीर

— नानक —

काहे रे बन खोजन जाई ।

सर्व-निवासी सदा अलेपा तोही संग समाई ॥

पुष्प-मध्य ज्यों बास बसत है, मुकुर माँहि जस छाँई ।

तैसे ही हरि बसे निरन्तर घट ही खोजो भाई ॥

बाहर भीतर एकै ही जानो, यह गुरु ग्यान बताई ।

जन नानक बिनु आपा चीन्है मिटै न भ्रम की काई ॥

जो नर दुख में दुख नहिं मानै ।

सुख सनेह अरु भय नहिं जाके, कंचन माटी जानै ।

नहिं निन्दा नहिं अस्तुति जाके, लोभ मोह अभिमाना

हरख सोक ते रहै नियारो नाहीं सोक मद माना ॥

आसा मनसा सकल त्यागि कै, जग ते रहै निरासा ॥ (उदासा ।)

काम क्रोध जेहि परसै नाहीं, तेहि घट ब्रह्म निवासा ॥

गुरु-किरपा जेहि नर पै कीन्ही तिन यह जुगति पिछानी

नानक लीन भयो गोबिन्द सों, ज्यों पानी सँग पानी ॥

—x—x

रैदास

X प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी जाकी अँग अँग बास समानी ।

प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा ॥

प्रभुजी तुम दीपक हम बाती, जाकी ज्योति बरै सारी राती ॥

प्रभुजी तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहि मिलत सोहागा ॥

प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥

38

~~सूरदास~~

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई, दूसरो न कोई साधो, सकल लोक जोई ॥ भाई छोड़या बन्धु छोड़या छोड़या सगा सोई ॥ साधु संग बैठि बैठि लोक लाज खोई ॥ भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई । अँसुवन जल सींच सींच प्रेम बेलि बोई ॥ दधि मथ घृत काढ़ि लियो डार दियो छोई ॥ राणा विष को प्यालो भेज्यो, पीय मगन होई, अब तो बात फैल गई, जाणै सब कोई । मीरा राम लगन लागी होनी होय सो होई ॥

×

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै ।
कमलनैन को छाड़ि महातम और देव को ध्यावै ।
परम गंग को छाँड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै ।
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यौ, क्यों करील फल खावै
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ।

× × × × ×

वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे ।
पर दुःखे उपकार करे तो ये मन अभिमान न आणे रे ॥१॥
सकल लोक मां सहु ने वन्दे निंदा न करे केनी रे
वाच काछ मन निश्चल राखे धन धन जननी तेनी रे ॥२॥
सम दृष्टिने तृष्णा त्यागी पर स्त्री जेने मात रे ।
जिह्वा थकी असत्य न बोले पर धन नव झाले हाथ रे ॥३॥
वण लोभी ने कपट-रहित छे काम क्रोध निवार्या रे ।
भणे नरसैंयो तेनु दरसन करता कुल एकोत्तर तार्या रे ॥४॥

हमारे निर्धन के धन राम।
जात नहीं छीजत, आगम जानत, ऐसे हैं दीनानाथ।
चोर न लेत घटत नहिं कबहूँ आवत गाढ़े काम।
बैकुंठनाथ सकल सुखदायी सूरदास सुखधाम॥

बड़ी है रामनाम की ओट - पृ० २८५।

दूसरी बार

X अबुनजो आइ पितै बिसरौ ॥ टेक ॥

जैसे स्वान कांच मन्दिर मैं भ्रम सैं भूँकि मरो।
ज्यों केसरी बपु निरखि कूप-जल प्रतिमा देखि गिरो।
वैसे ही गज फटिक सिला मैं दसनन आनि अड़ो।
मरकट मुठि स्वाद नहिं बिछुरै, घर घर रटत फिरो।
कहै कबीर ललनी के सुवना तोहि कवन पकरो ॥

— x —

नाम अमल उतरै ना भाई ॥
और अमल छिन छिन चढ़ि उतरै, नाम अमल दिन बढ़ै सवाई।
देखत चढ़ै, सुनत हिय लागै, सुरत किये तन देत घुमाई ॥
पियत पियाला भये मतवाला, पायो नाम मिटी दुचिताई।
जो जन नाम अमल रस चाखा, तर गई गनिका सदन कसाई ॥
कह कबीर गूँगा गुड़ खाया, बिन रसना का करै बड़ाई ॥
— x — x — x

तेरा साईं तुज्झ मैं ज्यों पुहुपन मैं बास। कस्तूरी का मिरग ज्यों फिर फिर ढूंढै घास - कबीर।

हस्ते स्फाटिकमालिकां च दधतीं पद्मासने संस्थिताम्,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।

शारदाशारदा०

सौगन्ध्यनिरतान्तां

आशासु राशीभवदङ्गवल्लीभासेव दासीकृतदुग्धसिन्धुम्।
मन्दस्मितैर्निन्दितशारदेन्दुं वन्देऽरविन्दासनसुन्दरि त्वाम्॥

अम्भोधिः स्थलतां, स्थलं जलधितां, वज्रं तृणप्रायताम्,
मेरुः मृत्कणतां, तृणं कुलिशतां, धूलीलवः शैलताम्,
वह्निः शीतलतां हिमं दहनतां आयाति यस्येच्छया, लीला-
दुर्ललिताद्भुतव्यसनिने देवाय तस्मै नमः॥

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र, सर्वजन्तुषु तत्समम्। स्वयं च शक्यते
द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा। देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः
सदाशिवः। सोऽहंभावेन योऽर्चयेत् स हि मुक्तिमवाप्नुयात्॥
अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्मयः कोशः
स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः - अथर्ववेद। आत्मा क्षेत्रज्ञ उक्तः,
संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः। तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मा निगद्यते॥
न बिभेति परो यस्माद्, न बिभेति परान्च यः। यश्च नेच्छति
न द्वेष्टि, ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ यदा भावं न कुरुते, सर्वभूतेषु
पापकम्। कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा - महा० शान्ति ३२५ का
३२, ३३, ३४।

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहः
तपः। अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते, निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्।
भोगे रोगभयं, कुले च्युतिभयं, वित्ते नृपालाद् भयम्,
माने दैन्यभयं, बले रिपुभयं, रूपे तरुण्या भयम्, शास्त्रे वाद-
भयं, गुणे खलभयं, काये कृतान्ताद् भयम्, सर्वं वस्तु भयान्वितं
भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

प्रह्लाद– न शब्दगोचरं यस्य योगिध्येयं परं पदम्।

यतो यश्च स्वयं विश्वं स विष्णुः परमेश्वरः॥१॥

न केवलं मद्धृदयं स विष्णुराक्रम्य लोकान् सकलानवस्थितः।

स मां त्वदादींश्च पितः समस्तान् समस्तचेष्टासु युनक्ति सर्वगः॥३॥

न केवलं तात मम प्रजानां, स ब्रह्मभूतो भवतश्च विष्णुः।

धाता विधाता परमेश्वरश्च, प्रसीद कोपं कुरुषे किमर्थम्॥२॥

यतः प्रधानपुरुषौ यतश्चैतच्चराचरम्।

कारणं सकलस्यास्य स नो विष्णुः प्रसीदतु॥४॥

कः केन हन्यते जन्तुर् जन्तुः कः केन रक्ष्यते।

हन्ति रक्षति चैवात्मा ह्यसत् साधु समाचरन्॥५॥

तथापि प्रसज्जे किर्तारस्तत्राप्यं, धर्मार्थकामैरलमल्पकास्ते।

समाश्रिता ब्रह्मतरोरनन्ताद् असंशयं प्राप्स्यथ वै महत् फलम्॥६॥

सर्वभूतात्मके तात जगन्नाथे जगन्मये।

परमात्मनि गोविन्दे मित्रामित्रकथा कुतः॥७॥

त्वय्यस्ति भगवान् विष्णुर् मयि चान्यत्र चास्ति सः।

यतस्ततोऽयं मित्रं मे, शत्रुश्चेति पृथक्कुतः॥८॥

—x—x—x—x—x—x—

~~[illegible]~~ दुःखं सर्वं हि [illegible] विनाशय [illegible]पतति।

अस्मिन् दुःखमये संसारे कथं वयं दुःखविमुक्ताः स्याम, यथं च निर्वृतिं विन्देम, इति सर्वदा सर्वैः सर्वात्मना विचिन्तनीयम्। नास्मि आसीदिति न मन्तव्यम्। भवन्तो मे सुहृदाः इति दुःखविमुक्त्युपायं परमहितस्वरूपं कथयामि श्रूयताम्। आत्मरूपं भावमुपलभ्य, प्रसादं [illegible] देवः भगवानच्युत आराधनीयः। इदं सर्वं जगत् सर्वभूतमयस्य विष्णोः विस्तार एव। तस्मिन् विष्णौ [illegible] भेदेन भावना [illegible]।
[illegible] विष्णौ [illegible]

श्वेताश्वतर-

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय अध्याय३, श्लोक ८॥

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥१९॥ अणोरणीयान् महतो महीयान् आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः। तमक्रतुं पश्यति वीतशोको, धातुः प्रसादात् महिमान~~[struck]~~मीशम्॥२०॥

कठ उप०- "पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूः, तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्। कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्, आवृत्तचक्षुः अमृतत्वमिच्छन्"।

श्वेताश्व०- न तस्य कार्यं करणं च विद्यते, न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च- ६।८

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः. साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च- ६-११। यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवम् आत्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥ ६-१८। यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन॥

तैत्ति० वल्ली २ अनु० ४